

रविदास का काव्य और रस-सिद्धान्त: एक विवेचन

Hargian^{1*} Dr. Gobind Dawedi²

¹ Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

² Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार – भारतीय काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा संस्कृत से पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ठ से होती हुई, भारत की प्राचीन बोलियों के विशाल साहित्य को समृद्ध कर रही है। काव्यशास्त्र का रस-सिद्धान्त संस्कृत आचार्यों के लक्षणों में उदाहरण से प्रमाणित होता है। इन आचार्यों की सूक्ष्म दृष्टि रस के अंग प्रत्यंग का गहनता से सर्वेक्षण करके लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। रसवादी आचार्यों ने अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुपम नवरसों में से किसी एक रस को प्रधान व अन्य रसों को गौण रूप से काव्य में प्रस्तुत किया है।

-----X-----

भारतीय प्रतिभा से ज्ञान की जितनी भी शाखाएँ उत्पन्न हुई हैं। उनमें सौन्दर्यशास्त्र में जितने गहरे रूप में भारतीय हैं, उतना और कोई नहीं। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की इस ठेठ भारतीयता का प्रमाण रस सिद्धान्त है। रस की परिकल्पना के पीछे भारतीय मनीषियों की तत्त्वान्वेषी वृत्ति का व्यापक परिवेश है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस तत्त्व पर पर्याप्त विवेचन हुआ है क्योंकि रस काव्य का प्राणतत्व और मूलाधार है।¹

रस काव्य का केन्द्रीय आधार है। रसवादी आचार्यों भरतमुनि, मम्मट, विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है जबकि साहित्य के आचार्यों ने भी काव्य का सम्पूर्ण भाव-निरूपण रस दृष्टि से किया है। रस शब्द भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम शब्दों में से है। रस शब्द 'रस' धातु में अच्च प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। प्राचीनकाल में यह शब्द जल, सार, दुग्ध, सुरा आदि अर्थों में प्रयुक्त होता आया है। प्राचीनकाल में रस का अर्थ द्रव रूप में लिया जाता था। यह द्रव रूप पहले हृदय में और बाद में शरीरस्थ स्नायुओं में प फैल कर शरीर को परिपुष्ट करता है। दृग्वेद में सोमरस को ही रस कहा गया है। काव्य-शास्त्रियों ने रस का सामान्यतः प्रयोग काव्य-सौन्दर्य के अर्थ में किया है और रस की अभिव्यक्ति प्रत्येक दशा में विभावादि समुहालम्बनात्मक होती है।

संत शिरोमणि रविदास जी ऐसे समाज सुधारक व भक्त थे, जिन्होंने भारतीय समाज को टूटने से बचाया और अपना सम्पूर्ण जीवन इसके लिए समर्पित किया। तत्कालीन समाज में प्रचलित साधना पद्धतियों एवं विचारों में समन्वय स्थापित करते हुए नवयुग के अनुरूप विचारधारा विकसित की। आपके विचारों में

तत्कालीन व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति का स्वर था। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आपकी अन्तर-पीड़ा अनेक स्थलों पर फूट पड़ी है किन्तु इनकी अभिव्यक्ति शैली में एक संत का संतोष और एक भक्त का धैर्य, राजनीति का जोश व फटकार की भाषा थी। आपकी युगानुकूल विचारधारा के कारण ही आपको अपने समय में किसी भी धार्मिक नेता से ज्यादा सम्मान मिला है।

संत रविदास के जन्म स्थान के प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद रहा है। राजस्थान, गुजरात व बनारस को इनका जन्म-स्थान माना गया है। मत-मतान्तरों के पश्चात् इनका जन्म राजस्थान के चित्तौड़ में हुआ। जहां कुम्भनदास मन्दिर के पास रविदास की छतरी आज भी विद्यमान है। रविदास जी के विभिन्न नाम हैं-रैदास, रूईदास, रेहीदास, रायदास, रोहिदास आदि। इनकी रचनाओं में उनकी शिक्षा सम्बन्धी कोई भी ठोस प्रमाण हमें नहीं मिलता। इन्होंने जो भी साहित्यिक रचनाएँ की हैं वे साधु संगति व गुरु कृपा से ही की हैं। संवत् 1433 से 1576 तक का इनका दीर्घ जीवनकाल भारतवर्ष के लिए वरदान का समय रहा है।

इन्होंने आजीवन मानव समता पर जोर दिया। इनके विषय में जो भी सूचनाएँ हमें प्राप्त हुई हैं, उनसे तथा उपलब्ध साहित्य से यह सिद्ध होता है कि वे एक परमसन्त एवं आचारनिष्ठ व्यक्ति थे। उनकी दृष्टि में कथनी की अपेक्षा करनी और रहनी का मूल्य अधिक था क्योंकि व्यक्ति स्तर पर मनुष्य की पहचान रहनी से होती है व सामाजिक स्तर पर उसकी पहचान करनी से होती है। जन्म व जाति से कोई छोटा-बड़ा नहीं होता।

बड़ाई का आधार आचार-व्यवहार है और किसी भी व्यक्ति का आचार-व्यवहार तब तक ठीक नहीं हो सकते जब तक वह भौतिक आसक्तियों से विरक्त नहीं होता। भोगों से विरक्त और आचार-विचार की श्रेष्ठता के लिए रविदास जी ने सत्संग के ग्रहण और कुसत्संग के त्याग को बहुत महत्व दिया है।²

रविदास जी के कृतित्व में हमें सर्वप्रथम गुरु-ग्रन्थ साहिब में संकलित 40 पद मिलते हैं, तत्पश्चात् बेलवेडियर पैरस इलाहाबाद ने उनके 85 पद और 6 साखियों का संकलन भी प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में पृथ्वी सिंह आजाद ने भी अपनी पुस्तक 'रविदास-दर्शन' में 193 साखियों का संग्रह दिखाया है। डॉ. वी.पी. शर्मा ने अपनी पुस्तक 'संत-गुरु रविदास वाणी' में सर्वाधिक 183 पद तथा 43 साखियों का संकलन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इनके कृतित्व को संकलित करते समय विद्वानों ने इनके पदों व साखियों की संख्या भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत की है।

इनकी वाणी के मूल में धार्मिक भावना विद्यमान थी। धार्मिक जीवन बिताने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह का त्याग अति आवश्यक है। वे धर्म और कर्म को एक मानते हैं और धर्म का प्रयाय-कर्म, सत्कर्म, स्वकर्म तथा सदाचरण अर्थ माना है। निष्काम कर्म भावना को आपने धर्म स्वीकारा है। रविदास जी भक्त कवि के साथ-साथ समाज सुधारक भी माने गए हैं। इन्होंने रुढ़ियों और परम्पराओं का खण्डन आंख मूंदकर नहीं किया अपितु विगत, वर्तमान और भविष्य की समन्वयपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का पोषण भी आपने किया। इन्होंने विशुद्ध सामाजिक जीवन व्यतीत कर अपने समस्त दायित्वों का निर्वाह भी किया है। इनके जन्मकाल के समय जन-सामान्य विषमता, शोषण और घोर निराशा की चक्की में पिस रहा था। रविदास जी ने इन बुराइयों का विरोध कर आर्थिक और नैतिक विचारों पर भी अपनी दृष्टि डाली। इन्होंने अर्थ को प्रभु मिलन में बाधक और दुःख का सबसे बड़ा कारण माना है। राजनीतिक प्रभावों के प्रति अपना सचेत दृष्टिकोण रखते हुए आपने जन-साधारण को जागरूक करने और उभारने के लिए आजीवन संघर्षरत रहे।³

रविदास के काव्य का अध्यावलोकन करने से हमें पता चलता है कि इनके काव्य में सम्पूर्ण रस निष्पत्ति हुई है। रस-सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य ने आठ रसों को ही प्रमुखता प्रदान की थी परन्तु परवर्ती आचार्यों ने काव्य में रसों की संख्या ग्यारह स्वीकार की है। इनमें शृंगार, वीर तथा शांत रसों को प्रधान रस रूप में तथा हास्य, करुण, वीभत्स, रौद्र, भयानक, भक्ति, अद्भुत और वात्सल्य रस को गौण रूप में स्वीकार किया है। अभियंजना और परिकल्पना के आधार पर रविदास के काव्य में हमें सभी ग्यारह रसों की अभिव्यक्ति मिली है।

शृंगार रस का मुख्य आधार स्त्री-पुरुष आकर्षण माना गया है, जिसे शास्त्रीय भाषा में रवि स्थायी भाव भी कहते हैं। शृंगार रस दो प्रकार का होता है-संयोग और वियोग शृंगार। रविदास के काव्य में हमें दोनों रूप देखने को मिलते हैं। इन्होंने आत्मा-परमात्मा के मिलन को दाम्पत्य प्रेम भाव के रूप में व्यक्त किया है। जीवात्मा को पत्नी व परमात्मा को पति मानकर आध्यात्मिक परिणय के आयोजन द्वारा संयोग शृंगार का परिपाक हुआ है। इसी प्रकार वियोग शृंगार में जीव सांसारिक विषय विकारों में फसकर परमात्मा को भूल जाता है और उसे उस निर्गुण निराकार ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। आत्मा-परमात्मा के विरह में तड़पती रहती है। जिस प्रकार एक सुहागिन सेज पर बैठी पर उसे अपने का प्रेम नहीं मिलता। वह विरह की आग में जलती रहती है।⁴

रविदास जी का काव्य का मूल स्वर भक्ति रस रहा है। इनकी वाणी में भक्ति का जो स्वरूप है वह मौलिक व समाजोपयोगी है। इनके काव्य में भक्ति ईश्वर के प्रति अनुराग रूपा है। ऐसी स्थिति में सेवक भगवान की शरण में जाकर अपनी स्थिति बनाए रखना चाहता है और मुक्ति की कामना करता है। इनकी भक्ति में हमें नवधा भक्ति, कान्ता भक्ति व प्रेमा भक्ति का रूप देखने को मिलता है। वाणी में परमात्मा विरह की पीड़ा, आत्मनिवेदन और रामनाम के प्रति अखण्ड निष्ठा है।

सन्त गुरु रविदास जी का काव्य किसी अभूतपूर्व आलौकिक वस्तु के श्रवण-दर्शन से चित का विस्तार विस्मय है। काव्यशास्त्रीय मतों के अनुसार अलौकिक कर्म, कथन या दृश्य अद्भुत रस के आलम्बन विभाव है और आलौकिक गुणों का महात्म्य उद्दीपन काव्यशास्त्रीयों के अनुसार आलौकिक कर्म, कथन या दृश्य अद्भुत रस की उत्पत्ति में सहायक है। रविदास के काव्य का प्रमुख स्वर अध्यात्म रहा है, जिसमें वे ब्रह्म की आलौकिक शक्तियों, माया के प्रपंच और आश्चर्यजनक कार्यों का विस्तार विस्मय की प्रतीति में सहायक है। भ्रम के कारण हमें सत्य की पहचान नहीं होती और असत्य विस्मय का कारण होता है। अज्ञात सत्ता का मालिक निर्गुण-निराकार ब्रह्म आश्चर्यजनक क्रियाएँ करता है इसी रोमांच, आश्चर्य से हमारी आंखें फटी रह जाती है। जिनसे अद्भुत रस की परिणति होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहसपूर्ण आनन्द की उमंग को वीर रस कहा है। किसी भी विषय में संलग्नता साहसिकता का होना भी एक प्रकार का उत्साह है। किसी भी विषय में असाधारण योग्यता की शक्ति हो, वहां वीर रस है। काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार धर्मग्रन्थ के वचन आदि वीर रस के आलम्बन विभाव है, वीर की कीर्ति उसकी महिमा कार्य आदि उद्दीपन विभाव, धर्म का आचरण करना, उपदेश देना, चेतावनी

देना इत्यादि अनुभव है तथा धर्म, चपलता, हर्ष, क्षमा औत्सुक्य आदि संचारी भाव की कोटि में आते हैं।

हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' है। जब किसी हास्यास्पद वस्तु या व्यक्ति आदि आलम्बन भाव से उद्बुध उसकी चेष्टाएँ या परिवेश रूप उद्दीपन से उद्दीप्त हंसी उड़ाने वाले आश्रय नामक पात्र के अनुभावों द्वारा व्यंजित चापल्यादि संचारी भावों से पुष्ट हो काव्य हास्य रस का निरूपण निर्माण करता है। रविदास जी के काव्य में सामाजिक यथार्थ की सच्ची पकड़ थी, जिसके कारण वह अपनी बात को ज्यादा स्पष्ट और जोरदार भाषा में कह सके।

जब विभाव अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से वासना रूप में सामाजिक सहृदय में स्थित क्रोध स्थायी भाव आस्वादित होता हुआ: रौद्र रस में परिलक्षित हो जाता है जहाँ विरोधी पक्ष की छेड़खानी, अपमान, अपकार, गुरुनिन्दा, देश और धर्म के अपमान आदि से प्रतिकार या प्रतिशोध की भावना जागृत होती है। वहाँ काव्यशास्त्रियों ने रौद्र रस माना है।

जब किसी भयानक वस्तु को देखने या सुनने से भय उत्पन्न हो वहाँ भयानक रस होता है। जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोग सहृदय सामाजिक के हृदय में वासना रूप में विद्यमान 'भय' स्थाई भाव से होता है। वहाँ भयानक रस की उत्पत्ति होती है। भयदायक व्यक्ति दर्शक या पाठक या पाठक इसका आलम्बन विभाग है और भयमुक्त व्यक्ति की त्रासदायक व्यवस्था, भूत प्रेत की आशंका के कारण उसका अकेलापन या उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव है। उद्दीपन विभाव में भयदायक व्यक्ति की चेष्टाओं से उसका कांपना, पसीने आ जाना, रोमांचित हो जाना आदि अनुभाव है। सन्त गुरु रविदास के काव्य में भयानक रस दिखाई पड़ता है।

घृणित वस्तुओं के श्रवण दर्शन से घृणा या जुगुप्सा का भाव उदित होता है और जुगुप्सा विभत्स रस का स्थायी भाव है। विभत्स रस में हाड़-मांस, रक्त, दुर्गन्धपूर्ण, कुत्सित वस्तु का चित्रण रहता है। रविदास के काव्य में विभत्स रस उपदेश, काल, माया, शरीर की नश्वरता और अपवित्रता के वर्णन में आया है। जिसमें जीव हत्या, मांस भक्षण आदि दृश्यों को देखकर पाठक या दर्शक के मन में ग्लानि आदि भाव जागृत होते हैं, जिनसे विभत्स रस की उत्पत्ति होती है।

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। आचार्यों के अनुसार ईष्ट के नाश से, ईष्ट वस्तु या व्यक्ति की हानि होना करुण रस का कारण होता है। इसमें चित्त की विकलता विद्यमान रहती है। इसमें मृत व्यक्ति या नाशवान वस्तु का उसके प्रिय द्वारा रोना, सिसकियाँ भरना, भाग्य कोसना, भविष्य की चिन्ता आदि

शामिल रहती है। सन्त रविदास के काव्य में निर्गुण-निराकार ब्रह्म तो सर्वत्रा विद्यमान है, उसका ठिकाना कहीं विशेष जगह विद्यमान नहीं है। इसलिए हमें उदास नहीं होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ तथा परवर्ती आचार्यों ने 'शांत' रस को तथा उसके स्थायी भाव 'निर्वेद' को पूर्णतया स्वीकृति प्रदान की है। जब वीर, श्रृंगार, करुण रस परिणत होते हुए अहंकार रहित हो जाते हैं। तब शांत रस की उत्पत्ति होती है। रविदास के काव्य में शांत रस प्रचुरता से विद्यमान है। इनके स्मस्त विचार आध्यात्मिक अनुभूति से परिपूर्ण है। इसी आध्यात्मिकता के कारण इनकी काव्य चेतना शांत रस से परिपूर्ण दिखाई देती है। वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सल है। इसमें माता-पिता की पुत्रा के प्रति रति, बच्चों की तोतली बोली, घर के आंगन में भरी जाने वाली किलकारियाँ व उनकी अबोध जन्य क्रियाएँ वात्सल्य रस के उत्पादक कारण हैं। काव्यशास्त्रियों ने भगवान के गुणों के बखान के साथ-साथ भक्त की दीन-हीन अवस्था को वात्सल्य रस की उत्पत्ति का कारण माना है। संत रविदास के काव्य में वात्सल्य रस में इनका उपास्य देव के साथ पिता-पुत्रा सम्बन्ध, स्वामी सेवक का सम्बन्ध बन जाता है।

भावानुभूतियाँ काव्य को काव्य की गरिमा से विभूषित करती हैं। भाव ही रसोद्रेक के मूल निमित्त होते हैं। रसवादी आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है। रसों की निबंधना के लिए भावानुभूतियों का व्यापक आयाम अनिवार्य है। सन्त शिरोमणि गुरु रविदास का काव्य मुक्तक है तथा प्रतिपादय भी इतना व्यापक नहीं है कि विविध रसों का समुचित और पूर्ण परिपाक हो। वैविध्य की सीमा होने पर भी भक्ति अद्भुत, शान्त, श्रृंगार, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, वात्सल्य, हास्य आदि रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। आलौकिक ब्रह्म से प्रणाय-सम्बन्ध स्थापित करने के कारण उनकी भावानुभूतियाँ रहस्य के आवरण में लिपटी हुई हैं। सन्त गुरु रविदास के काव्य में संयोग और वियोग के दोनों ही चित्रा सुन्दर बन पड़े हैं। उनकी विरह-वेदना की विभिन्न स्थितियों की जो तलस्पर्शी व्यंजना रैदास के काव्य में मिलती है वह अन्यत्रा दुर्लभ है। विरही जीवन की कसकती और

धुंधवाती व्यथा उनके काव्य सजीव मिलती है। इनके अतिरिक्त भक्तिपरक स्थलों में वीर रस का उत्कर्ष भी देखा जा सकता है। जीवन की नृश्वरता के भाव-बोध के लिए स्थल पर भयानक और वीभत्स रसों का भी वर्णन मिलता है। प्रतिपक्षी को सम्बोधित वाणी में रौद्र रस समन्वित है। रसों की

निबंधना होने से संचारियों के विकास को भी उपयुक्त अवकाश मिला है।¹⁵

रसयुक्त होने से सन्त गुरु रविदास की वाणी में काव्यशास्त्रा के अन्य सम्प्रदायों का भी समन्वित रूप देखने को मिलता है। सन्त गुरु रविदास के काव्य में ध्वनि और रस का सहयोग कल्पना और भावना का सहयोग है व दोनों का प्रतियोग भी कल्पना तथा भावना का प्रतियोग है। जिस प्रकार केवल भावना या केवल कल्पना से कवित्व की सिद्धि संभव नहीं है इसी प्रकार भाव या केवल ध्वनि के आधार पर भी काव्य का अस्तित्व संभव नहीं हो सकता। दोनों के पूर्ण सहयोग से ही काव्य की सृष्टि होती है।

काव्य में अलंकारों का आना भी स्वाभाविक बात है। सन्त गुरु रविदास का काव्य भी अलंकारों से विहीन नहीं हो सकता। सत्य अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के क्रम में उनकी वाणी अलंकारों से युक्त हो गयी यथार्थ भाव बोध के अनुरूप ही इन अलंकारों की योजना हुई अर्थात् सन्त गुरु रविदास ने देखा अनुभाव किया जो विचारा वही जन जीवन से गृहीत अनुभूति अलंकारों द्वारा अभिव्यंजित हुई है। सन्त गुरु रविदास का अप्रस्तुत का अप्रस्तुत विधान पूर्णतः विलक्षण और नवीन है। उनके अधिकांश उपमान जीवन से गृहीत हैं तथा उनमें लोकसंस्कृति उपमान अधिक संख्या में हैं। वष्य-विषय के सागोपांश विवेचन में इन उपमानों का प्रयोग अनुपम और बेजोड़ है।

आचार्य क्षमेन्द्र ने कहा है कि काव्य रस से सिद्ध होता है और औचित्य क्षमेन्द्र ने रस को अस्तित्व द्योतक, प्राण रूप तत्त्व माना है जिससे काव्य सिद्ध या सम्पन्न होता है और औचित्य को स्थिरता का द्योतक जीवन तत्त्व बताया है। प्राण चेतना और जीवन स्थिरता का अटूट सम्बन्ध है।¹⁶

कुन्तक ने उच्च स्तर में 'सालकास्य' काव्यता की घोषणा की है, फिर भी उनकी सहृदयता रस का अनादर न कर सकी। सिद्धान्त रूप से वक्रोक्ति और रस में वैसा मौलिक साम्य तो नहीं जैसा ध्वनि और वक्रोक्ति में है, किन्तु सब मिलाकर वक्रोक्ति-चक्र में रस का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तव में यह कहना असंगत न होगा कि रस के प्रति वक्रोक्ति और ध्वनि दोनों सम्प्रदायों का दृष्टिकोण बहुत कुछ समान है।¹⁷

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने लिखा है 'विशिष्ट पद रचना रीति, अर्थात् विशिष्ट प्रकार की पद रचना ही रीति है। वामन की पद रचना का अभिप्राय पदों की संघटना से है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर की रचना विधाता की एक संघटना है व उसमें शरीर के अंग प्रतभागों को उनके उचित स्थान पर रखकर सारे शरीर की संघटना की गई है, उसी प्रकार साहित्यकार भी साहित्य की संघटना इस तरह से करता है कि उसके सौन्दर्य और

उपयोगिता में कोई हीनता या दोष न दिखाई न दे। अनुभूति की चरमावस्था में रविदास की वाणी में अत्यन्त सहज रूप में रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य आदि के सौन्दर्य से सम्बन्ध कर लिया है। एक ही शब्द में उनका समस्त कलात्मक संविधान ही पूर्ण स्वाभाविक है।

संदर्भ सूची:

1. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, गुरु रविदास संस्थान, चण्डीगढ़।
2. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत गुरु रविदास वाणी, सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. अनुवादक डॉ. मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब; हिन्दी सैची, 1-4, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1987
4. आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक, सम्पादक, आचार्य जगन्नाथ पाठक, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण-1972
5. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, गुरु रविदास संस्थान, चण्डीगढ़।
6. क्षमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा, पृ. 115
7. कुन्तक, हिन्दी वक्रोक्ति जीवित-व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर, पृ. 1

Corresponding Author

Hargian*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan